भारत में साम्प्रदायिक विकास (1857 से 1947 तक)

डॉ योगेन्द्र कुमार,

सहायक अध्यापक (इतिहास),
फ्यूचर विश्व विश्वविद्यालय,
फरीदपुर, बरैली।

सारांश

1857 की क्रान्ति में हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द चरम पर था। दिल्लीए अवधए कानपुरए झांसीए बिहारए फैजाबाद तथा जगदीशपुर में तत्कालीन देसी रियासतों ने ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेनाओं से खुलकर संघर्ष किया। बड़ी संख्या में अवधए दिल्ली तथा फैजाबाद में हिन्दू तथा मुस्लिम स्थानीय जनता तथा जमींदारों ने अंग्रेजों का सशक्त विरोध किया। 1857 की इस असफल क्रान्ति के बाद 1858 में भारत में कम्पनी शासन के स्थान पर ब्रिटिश क्राउन का शासन आरम्भ हुआ। तत्कालीन ब्रिटिश शासन ने यह स्पष्ट समझ लिया था कि लम्बे समय तक भारत में शासन करने के लिए फूट डालो और शासन करो की नीति का प्रयोग करके आगे के दशको में साम्प्रदायिक राजनीति बढ़ाई जाए। जिसका दुष्परिणाम भारत विभाजन के रूप में सामने आया। नये ब्रिटिश शासन ने दिल्लीए अवधए फैजाबाद कानपुर जैसे तत्कालीन राजनीतिक शक्ति केन्द्रों पर यहां के मुस्लिम जमीदारो ताल्लुकेदारों तथा प्रभावशाली मुसलमानों को विश्वास तथा स्वीकृति दिया जाना आरम्भ किया गया। 18वीं शताब्दी के अन्त तक भारत में साम्प्रदायिकता परोक्ष रूप से बढ़ने लगी। मुस्लिम समाज के सभ्रान्त तथा शिक्षित लोगों द्वारा ब्रिटिश सरकार का समर्थन भी किया जाने लगा। सर सय्यद अहमद खान जैसे प्रबुद्ध मुस्लिमों ने मुस्लिम समाज में एक नवीन बौद्धिक चेतना को बढ़ावा दिया। सरूप 20वीं शताब्दी के आरम्भिक दशक में बंगाल विभाजन तथा मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। कांग्रेस में भी जिन्ना जैसे मुस्लिम नेताओं ने ब्रिटिश नीति का समर्थन किया। अली बन्धुओं ने यद्यपि खिलाफत तथा असहयोग आन्दोलन में हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रयास किया।

लेकिन 1920 तक ब्रिटिश नीति का साम्प्रदायिक कार्ड प्रभावी हो चुका था। ब्रिटिश सरकार ने भारत में शासन चलाने के लिए धार्मिक संघर्ष को बढ़ावा दिया। बंगाल विभाजन के बाद साम्प्रदायिकता तेजी से बढ़ी। मुस्लिम लीग की स्थापनाए मुस्लिम वर्ग को प्रथक निर्वाचन तथा फूट डालो और शासन क रूप में अन्ततः भारत का विभाजन हुआ।

प्रस्तावना

1857 के बाद साम्प्रदायिकता का उद्भव और विकास ब्रिटिश नीति की भूमिका:-

साम्प्रदायिकता के विकास के लिए ब्रिटिश सरकार की नीति मुख्य रूप से जिम्मेदार थी। 1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार के समक्ष मुख्य रूप से दो उद्देश्य थेः-

1. समाज में अपने समर्थक बनाना, नियंत्रण एवं प्रभाव बढ़ाने के उददेश्य से कुछ वर्गों को संरक्षण देना और इस प्रकार समाज में अपने आधार को मजबूत करना।
2. भारतीयों में एक ता न होने देना। यदि समाज के सभी वर्ग एक विचारधारा के अंतर्गत हो जाते तो अंग्रेजी साम्राज्य के लिए खतरा पैदा कर सकते थे। इसलिए सांप्रदायिक विचारधारा को इस्तेमाल करके उसे बढ़ावा देते हुए भारतीयों में एकता नहीं होने दी गयी। बीसवीं शताब्दी में यह कार्य और प्रभावपूर्ण ढंग से किया गया और राष्ट्रीय विचारधारा संगठन और मांगों के न्यायसंगत होने तथा उनकी प्रामाणिकता को नकारने के उद्देश्य से सांप्रदायिक मांगों और संगठनों को प्रोत्साहित किया गया। इस प्रकार एक ओर मुसलमानों को कांग्रेस से दूर करने का भरसक प्रयास किया गया और दूसरी ओर कांग्रेस के दावों को यह कहकर ठुकराया जाता रहा कि कांग्रेस मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नहीं कर रही है। सांप्रदायिकता ने सरकार को एक और लाभ पहुंचाया। सांप्रदायिक तनाव बने रहने तथा इसके और बदतर होने को ब्रिटिश शासन ने अपनी सरकार बनाए रखने के लिए अस्त्र के रूप में प्रयोग किया। उनके तर्क इस प्रकार थे कि भारतीय जनता आपस में विभाजित है, अतः यदि ब्रिटिश शासन समाप्त भी हो जाए तो भी वे सरकार बनाने की स्थिति में नहीं है।

बीसवीं शताब्दी में सांप्रदायिकता के विकास को राष्ट्रवादी आंदोलन द्वारा ही रोका जा सकता था। सांप्रदायिकता राष्ट्रवादी विचारधारा एवं शक्तियों के द्वारा ही परास्त की जा सकती थी। लेकिन एक राष्ट्रवादी विचारधारा एवं शक्ति के प्रतिनिधि के रूप में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जनसाधारण में सांप्रदायिकता फैलने से न रोक सकी। कांग्रेस राष्ट्रवाद एवं धर्मनिरपेक्षता के प्रति कटिबद्ध थी और भारतीयों में एकता लाने की इच्छुक थी। उसने 3/7 राष्ट्रीय आंदोलन में सांप्रदायिक शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष भी किया। लेकिन वह असफल रही।

बंगाल का विभाजन और मुस्लिम लीग का गठन

संभवतः बंगाल का विभाजन (1905) प्रशासनिक कदम के रूप में किया गया। लेकिन इसने जल्दी ही अंग्रेजी सरकार को एक अन्य राजनैतिक लाभप्रदान किया, क्योंकि इसमें बंगाल को हिन्दू बाहुल्य और मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रों में बांट दिया। इस प्रकार यह बंगाल के राष्ट्रवाद को कमजोर बनाने और उसके विरुद्ध मुसलमानों को मजबूत करने की अंग्रेजों की इच्छा का परिणाम था। वाइसराय कर्जन के अनुसार, "विभाजन पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को वह एकता प्रदान करेगा जो कि पुराने मुसलमान शासकों और राजाओं के शासन के काल के बाद उन्हें फिर से नहीं प्राप्त हो सकी थी।" विभाजन की योजना और स्वदेशी आंदोलन के साथ ही सरकारी संरक्षण में 1906 के अन्त में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का गठन हुआ। इस दल में आगा खां, ढाका के नवाब और नवाब मुहसिन्नुल मुल्क जैसे बड़े जमींदार, भूतपूर्व नौकरशाह औरउच्च वर्गीय मुसलमान शामिल थे। इसका उद्देश्य नौजवान मुसलमानों को कांग्रेस की ओर न जाने देने और फलतः राष्ट्रवादी मुसलमान में शामिल नहीं होने देना था।

मुस्लिम लीग का गठन पूर्ण रूप से सरकार के प्रति निष्ठा की भावना से प्रेरित था और इसका एकमात्र कारण समर्थन और संरक्षण के लिए सरकार का दामन पकड़ना था। इस उद्देश्य में उन्हें निराशा नहीं हुई। इस काल का एक महत्वपूर्ण तथ्य मुस्लिम अलगाववाद का विकास था, जिसके कारण थे-

- स्वदेशी आंदोलन के दौरान पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों का फैलाया।
- सरकार का यह प्रचार कि बंगाल के विभाजन से मुसलमानों को लाभहोगा।
- सांप्रदायिक दंगे भड़कना। स्वदेशी आंदोलन के दौर में पूर्वी बंगाल में कई सांप्रदायिकता दंगे हुए।
- पृथक निर्वाचन मंडल

1909 में विधान परिषदों के लिए निर्वाचन मोरले मिंटो सुधारों का एक महत्वपूर्ण अंग था। सांप्रदायिकता के इतिहास में यह महत्वपूर्ण कदम था।

पृथक निर्वाचन मंडल का अर्थ चुनाव क्षेत्रों, मतदाताओं और निर्वाचित उम्मीदवारों को धर्म के आधार पर समूहों में बांटना था। व्यावहारिक रूप से इसका अर्थ भिन्न मुस्लिम चुनाव क्षेत्र, मुस्लिम मतदाता और मुस्लिम उम्मीदवारों के लिए मतदान नहीं कर सकते थे। इस प्रकार चुनाव प्रचार और

राजनैतिकरण को धार्मिक दीवार के बीच सीमाबद्ध कर दिया। इन सभी घटनाओं के घातक परिणाम अवश्यम्भावी थे।

इन सुधारों से मुसलामानों को आश्वासन दिया गया कि उन्हें कौंसिलों का प्रतिनिधित्व केवल उनकी संख्या के आधार पर ही नहीं बल्कि उनके "राजनैतिक महत्व' के आधार पर भी दिया जाएगा।

लखनऊ समझौता

लखनऊ समझौता (1916) कांग्रेस और मुस्लिम लीग द्वारा एक समझौते पर पहुंचने को प्रयास था। मुस्लिम लीग का समर्थन प्राप्त करने के लिए एक अस्थायी प्रबन्ध के रूप में कांग्रेस ने पृथक निर्वाचन मंडल की मांग मान ली। लखनऊ समझौते से संबंधित दो तथ्य महत्वपूर्ण थे।

यह नेताओं के बीच का समझौता था न कि जनता के बीच का। कांग्रेस लीग के समझौते को गलत रूप में हिन्दू-मुस्लिम समझौते का नाम दिया गया। इसके पीछे समझ यह थी कि लीग मुसलमानों की असली प्रतिनिधि है।

गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट, 1919, जिसने मुसलमानों को लखनऊ समझौते की अपेक्षा कही अधिक रियायतें दी, के कारण लखनऊ समझौता अर्थहीन हो गया।

साइमन कमीशन (1927) के आने और लगभग सभी राजनैतिक विचारों द्वारा सर्वसम्मति से इसका बहिष्कार किये जाने के कारण एक बार फिर एकता का अवसर आया। मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग का एक हिस्सा पृथक निर्वाचन मंडल के स्थान पर संयुक्त निर्वाचक मंडल के समर्थन में जाने को तैयार था। लेकिन उसके लिए निम्न शर्तें थीं:-

- केन्दीय विधान मण्डल में मुसलमानों का एक तिहाई प्रतिनिधित्व हो, सिंध को बंबई से अलग करके एक अलग प्रदेश बनाया जाए,
- उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रदेशों में सुधार लाए जाए तथा पंजाब और बंगाल में उनकी जनसंख्या के प्रतिशत के अनुसार मुसलमानों को विधान परिषदों में प्रतिनिधित्व मिलें।

कांग्रेस ने ये मांगे स्वीकार कर ली। जिससे एकता की संभावना बढ़ी। लेकिन हिन्दू महासभा द्वारा आल पार्टीज कांफ्रेन्स (1928) में इसके बिना शर्तअस्वीकार किये जाने के कारण समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। लीग और महासभा की

प्रतिद्वंद्विता ने एकता के सभी प्रयास असफल कर दिए।

जन-साम्प्रदायिकता की ओर 1937 तक सरकार ने जिन्ना के सभी चौदह सत्रीय कार्यक्रम स्वीकार कर लिये थे। फिर भी जिन्ना लक्ष्य से बहुत दूर थे। वे स्वयं अथवा लीग, जिसके वे स्थायी अध्यक्ष बन चुके थे, को राजनैतिक सम्मान दिला पाने की स्थिति में नहीं ले जा पाए। इसलिए आवश्यक था कि लीग की सदस्यता में वृद्धि की जाए। अन्य सभी पृथक निर्वाचन मंडल, सीटों में आरक्षण आदि मान ली गयी थी।

1940 के लाहौर सत्र में जिन्ना ने द्विराष्ट्रीय प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इसके अनुसार मुस्लिम अल्पसंख्यक नहीं बल्कि वे एक राष्ट्र (Nation) थे। चूंकि हिन्दू और मुसलमान आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक रूप में भिन्न थे। इसलिए वे दो अलग-अलग राष्ट्र थे। अतः भारतीय मुसलमानों के लिए एक अलग स्वायत देश होना चाहिए। इस प्रकार मुस्लिम देश के रूप में पाकिस्तान के गठन का प्रस्ताव सामने आया।

क्रिप्स मिशन असफल रहा। लेकिन इसने मुस्लिम लीग को एक तरह से प्रोत्साहित किया। प्रान्तीय स्वायत्तता के प्रावधान ने पाकिस्तान बनने की मांग को वैधानिक रूप प्रदान किया। 1945-46 में चुनाव हुए। शिमला कांफ्रेस के अनुकूल परिणाम तथा पाकिस्तान की मांग के आधार पर चुनाव होने तक लीग मुस्लिम मतदाताओं को आकृष्ट करने के लिए पृथक मुस्लिम निर्वाचन मंडल का उपयोग करने के लिए बेहतर स्थिति में थी। "इस्लाम के खतरे में होने के धार्मिक नारे के साथ मुस्लिम व्यापारियों एवं मध्यम वर्ग के मुसलमानों की हुकुमत तथा अपने भविष्य के प्रति आत्म-निर्णय लेने के मुसलमानों के विशेषाधिकार के सपने को समाहित कर दिया गया।

निष्कर्ष

कैबिनेट मिशन योजना के बाद लीग ने "सीधी कार्यवाही' (Direct action) अथवा अपने चुनावोपरान्त नारे "लड़के लेंगे पाकिस्तान" की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति स्थिति अपने पक्ष में करने के लिए तत्पर हो गयी। इसके परिणामस्वरूप सर्वप्रथम सीधी कार्यवाही दिवस (Direct action day) (16 अगस्त, 1946) को सांप्रदायिक दंगे शुरू हुए और प्रतिक्रिया की एक पूरी श्रृंखला के रूप में पूरे देश, विशेषकर बम्बई, पूर्वी बंगाल और बिहार तथा यू.पी. पंजाब और उत्तर पश्चिमी

सीमांत प्रान्तों के कुछ भागों में फैल गए। कलकत्ता में लीग ने बंगाल के लीग अध्यक्ष सुहरावर्दी के प्रोत्साहन से 16 अगस्त को गैर-मुस्लिमों पद अचानक विधान आक्रमण शुरू कर दिए। सितम्बर 1946 में बम्बई में सांप्रदायिक दंगे शुरू हुए। 1947 तथा 1946 के शुरू में सांप्रदायिक दंगे निरन्तर चलते रहे जिसमें लाखों लोग मारे गए अथवा घायल हुए। मानवीय कष्टों तथा अमानवीकरण की यह सीमा, देश के आर्थिक एवं सामाजिक ढांचे का इस प्रकार पूर्णतः अस्त-व्यस्त होना, 1946 एवं 1948 के मध्य उप-महाद्वीप में भ्रातृघात (Fratricide) की ऐसी स्थिति विश्व सभ्यता के इतिहास में संभवतः ही इससे पूर्व कभी घटी हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. विपिन चन्द्रा, आधुनिक भारत, नई दिल्ली, 1972
2. सुमित सरकार, मॉडर्न इंडिया, दिल्ली, 1985
3. राज मल्होत्रा, हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया, नई दिल्ली, 2018
4. सोनाली बंसल, मॉडर्न इंडियन हिस्ट्री, नई दिल्ली, 2019अस्वीकार किये जाने के कारण समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। लीग और महासभा की प्रतिद्वंद्विता ने एकता के सभी प्रयास असफल कर दिए।